International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 3; 2017; Page No. 168-170

आधुनिकता की कसौटी में वैदिक नैतिक शिक्षा

सीताकान्त नाएक

Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, India

प्रस्तावना

वेदों से लेकर लौकिक साहित्य तक सर्वत्र नैतिक शिक्षा के विषय में भारतीय चिन्तकों तथा नीतिकारों ने प्रभूत चिन्तन किया है। भारत में सदा से ही धर्म–दर्शन और नीति एक–दूसरे से अपृथक् रहे हैं। यहाँ पर सदा से धारणा रही है कि बिना नैतिक पवित्रता के सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। बिना श्रद्धा के आत्मा परमात्मा का दर्शन या अनुभव नहीं हो सकता और बिना बुद्धि के सदसद्विवेक तथा मुक्ति नहीं हो सकती, इसलिए बुद्धि की कामना की गई है–

''धियो यो नः प्रचोदयात्।'' (य. 36/3)

वैदिक समाज शिक्षा और नैतिकता पर विशेष बल देता था। ऋग्वेद के अनुसार विद्याप्रचार से राष्ट्र में वसु, रुद्र और आदित्य विद्वान् पैदा होते हैं। विद्या प्रचार राष्ट्र को चेतनावान् बना देता है, वह पराधीन नहीं हो सकता। विद्या के कारण राष्ट्र के लोग दिव्यगुणों से युक्त होकर नाना प्रकार के व्यवहार वाले बन जाते हैं।[1]

ऋग्वेद का आदेश है कि शुद्रकुलोत्पन्न भी विद्याधिकारी बनाकर द्विज किया जाय।[2] आचार्य अग्नि के सदृश ब्रह्मचर्य व्रत से तप्त शीतोष्ण, सुख–दुःख, निन्दास्तुति आदि द्वन्द्वों को सहन करने वाले बुद्धिमान् विद्यार्थियों को पुरुषार्थ से विद्वान् करें।[3]

विद्या की उपयोगिता व्यावहारिक जीवन में होती हे। ब्रह्मचर्याश्रम से विद्याग्रहण करके विद्यार्थी जब समाज में जाता है तब वहाँ विभिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवहारों से उसका सामना होता है। एतदर्थ वेद में नैतिक शिक्षा का विधान हे। यथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सदाचार, दया, करुणा, एकता, सत्यनिष्ठा इत्यादि। विशेषरूप से सत्य की महिमा पर बड़ा बल दिया गया है।

नैतिकता का आधार सत्यः सत्य समाज की नैतिकता का आधार है। सत्य के आधर पर ही विश्वास और श्रद्धा तथा विश्वास और श्रद्धा के आधार पर ही समाज की अन्य नैतिक गतिविधियाँ आश्रित हैं। सत्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए ऋग्वेद में सत्य को समस्त जगत् के व्यवहार का कारण कहा है, मन्त्र में ऐसे सत्य वचन से रक्षा की कामना की गई है जिस पर द्युलोक, दिन–रात तथा सारा जगत् आश्रित है।[4] सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा के तप से ऋत और सत्य उत्पन्न हुए, तत्पश्चात् ऋत और सत्य से रात्रि, दिन समुद्रादि सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन हुआ।[5] सत्य की परिभाषा देते हुए वेद कहता है जैसा ज्ञान आत्मा में वर्तमान है वैसा मन में तथा जैसा मन में वैसा वाणी से कहना सत्य है, यथार्थ है।[6] योगगदर्शन के भाष्यकार व्यास ने सत्य का लक्षण ऋग्वेदानुसार ही किया है अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना ही सत्य है।[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्य के प्रशंसा में अनेक ऋचाओं का पाठ है। एक मन्त्र में कहा है कि सत्य ने भूमि को धारण किया हुआ है।

''सत्येनोत्तम्भिता भूमिः।'' (ऋ. 1/85/1)

डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने ऋत और सत्य का अभिप्राय– ''सारे विश्व प्रपञ्च में व्याप्त नैतिक आधार[8] बताया है। महर्षि दयानन्द ने ऋत को कार्य जगत् का अनादि कारण माना है।[9] आचार्य यास्क ने सत्य का अर्थ उदक, सत्य एवं यज्ञ किया है।[10] पाश्चात्त्य भाष्यकार ग्रिफिथ के अनुसार ऋत शब्द द्वारा विश्व की व्यवस्था एवं उसके विधान का निर्देश किया गया है। इसलिए ग्रिफिथ ने ऋत का अर्थ शाश्वत् विधान ;म्जमतदंस सूंद्ध अथवा पवित्र नियम ;भ्वसल वतकमतद्ध किया है।[11] अरविन्द के अनुसार सब वस्तुओं का सारभूत पदार्थ ऋत है।[12] ऋत तथा सत्य के महत्त्व को ध्यान में रखकर ही ऋग्वैदिक पुरुष तदनुसार आचरण करता था–

''ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया।'' (ऋ. 10/66/13)

अर्थात् मैं सद्भाव से ऋतपथ का अनुसरण करुँ।

सत्यनिष्ठा के साथ–साथ असत्य को निन्दनीय तथा असत्यभाषी को पापी कहा गया है।[13] जो असत्य बोलता है ऐसा व्यक्ति यज्ञ हेतु उपयुक्त नहीं है।[14] सत्य को वेदवत् मानकर प्रशंसा की गई है।[15]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जिसको धर्म कहते हैं वह सत्य ही है।[16] इसके अनुसार मनुस्मृति के धर्म के दस लक्षण[17] भी सत्य में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। अहिंसा, अस्तेय आदि नैतिक नियमों का वेदों में विस्तार से वर्णन है।

वैदिक चिन्तन का सार पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति न्याय तथा सत्य के पथ पर चलकर और पाप से बचकर ही होता था उस समय यह दृढ़ विश्वास था कि विश्व में एक ऐसी शक्ति काम कर रही है जो संसार को सुचारु रूप से न्यायपूर्वक चला रही है उसका नाम ऋत है।[18]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक काल की नीति का आधार ऋत और सत्य थे। ऋत और सत्य के अनुसार चलना ही वैदिक कालीन भारतीय आदर्श था। ऋत से नियन्त्रित होकर सत्य का आचरण करते हुए जीवन का वैभव और सुख प्राप्त करना तथा आत्मज्ञान द्वारा जरामृत्यु के शोक से बचना मनुष्य का लक्ष्य था। वैदिक काल में जिसे ऋत कहा जाता था परवर्ती साहित्य में उसे धर्म कहा गया।[19] धर्म और आत्मज्ञान वेदों की शिक्षा नीति तथा उपदेश है। यही विचार परवर्ती सभी शास्त्रों में व्याख्या के रूप में पाया जाता हे। इसी कारण वेदों को धर्म का मूलस्रोत और परम प्रमाण माना जाता है।[20]

''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।''

वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में नैतिकता

आज विज्ञान का युग है, प्रत्येक मानव वैज्ञानिक पद्धति तथा प्रमाणों में ही विश्वास करता हे। प्राचीन कालीन धार्मिक, दार्शनिक तथा नैतिक विचारों में विश्वास नहीं रहा। शास्त्रीय ज्ञान को कल्पना मात्र समझता है। शास्त्र और उनके उपदेशों पर भी श्रद्धा नहीं रह गयी तथा जीवन के आदर्श फीके

दिखाई पड़ने लगे हैं। नैतिक नियम अव्यावहारिक तथा अप्राकृतिक जान पड़ते हैं। आज का मनुष्य धन चाहता है, प्रभाव चाहता है शक्ति चाहता है और ये सब जिस किसी भी साधन द्वारा प्राप्त हो सके उस साधन की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। इसलिए उसके लिए कोई भी कुर्बानी कम मानी जा रही है। प्रश्न यह है कि आपके पास क्या है? यह नहीं कि आपने उसे कैसे प्राप्त किया। वस्तुएँ झूठ बोलकर, धोखा देकर, बेईमानी करके, हत्या करके, संगठन करके, तथा अन्यायपूर्वक भी यदि प्राप्त हो सकती हों तो कोई परवाह नहीं, किसी की हानि होती हो तो होने दो। आज साधन की पवित्रता और औचित्य के ऊपर ध्यान न देकर साध्य की प्राप्ति एकमात्र लक्ष्य रह गया है। आत्मप्रशंसा, दिखावटी प्रचार, झूठे वायदे, झूठ, धोखा, पक्षपात, साम, दाम, दण्ड, भेद का सर्वत्र प्रयोग आजकल लक्ष्य प्राप्ति के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में यही पढ़ाया जाता है कि युद्ध में उसी की विजय होती है, जिसके पास अधिक और अच्छे शस्त्रास्त्र तथा अधिक युद्ध सामग्री होती है एवं अधिक संगठन होता है। ''सत्यमेव जयते नानृतम्।'' ''न हि सत्यात् परो धर्मः।'' यह बात आजकल ठीक नहीं जान पड़ती।

आदमी का मूल्य आज उसके नैतिक–मानवीय–गुणों से नहीं बाज़ार में उसकी कीमत, खरीद–शक्ति और सत्ता से आँकी जाती हैं। राजनीति में अंध वफादारी ही उच्चतम नैतिकता है। वहाँ नैतिक पतन की कोई सीमा नहीं है। बड़े घोटालों और भ्रष्टाचार से पूरा राजनीतिक परिदृश्य नहाया हुआ है। ऐसा नहीं है कि इन दिनों नैतिक पतन को लेकर चिंताएँ नहीं हैं। प्रश्न है कि चोर से चोर कौन बोले? कहते हैं कि घोटाले और भ्रष्टाचार का बढ़ना विकास का लक्षण है। ऐसे कथनों से नैतिक गिरावट का अंदाजा लगाया जा सकता है। उम्मीद तो यह थी की विकसित तकनीक और सूचना क्रांति से घोटाले तथा भ्रष्टाचार मिट जाएंगे, दलालों पर निर्भरता खत्म होगी। परन्तु ये विचार भ्रमपूर्ण सिद्ध हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनैतिकता पर अंकुश लगाने में समाज असमर्थ है। जहाँ समाज असमर्थ हो जाता है वहाँ राज्य की भूमिका सामने आती है। परन्तु समस्या यह है कि हमारा राज्य स्वयं एक अनैतिक सत्ता बन चुका है। यहाँ तक की वह उस संविधान के प्रति उत्तरदायी नहीं रहा जो उसकी वैधता का आधार है। हम देखते हैं कि राज्य की शक्ति का उपयोग जनहित में करने के लिए जिन लोगों को चुना गया है, वे अपने संसदीय जीवन की शुरूआत करते हैं एक महान् झूठ से अर्थात् चुनाव के फर्जी विवरण से।

राजनीति शायद दुनिया का सर्वश्रेष्ठ नैतिक कर्म है क्योंकि राजनीतिज्ञ के जीवन का केन्द्र वह स्वयं नहीं अपितु उसका समाज होता है। लेकिन दुनिया का सबसे घटिया काम भी यही है क्योंकि इसके द्वारा एक सामाजिक संस्था का निकृष्टतम दुरुपयोग हो सकता है। राज्य की भूमिका पर यह ज्यादा जोर देना लग सकता हे परन्तु आधुनिक दुनिया में नैतिकता के प्रश्न का इससे गहरा सम्बन्ध है। हम अपने आप क्या करते हैं इससे नैतिकता का शायद बहुत ज्यादा अर्थ नहीं। नैतिक प्रश्न यह है कि हम दूसरों के साथ क्या करते हैं। नैतिक प्ररेणा मूल्यवान् होती है और वही हमें परिचालित करती है, लेकिन क्या सिर्फ उसी पर निर्भर रहा जा सकता है? जब तक धर्म एक ताकतवर शक्ति था तब तक शायद काफी दूर तक सम्भव था। यह व्यक्ति ही नहीं पूरे सामाजिक जीवन को निर्धारित करता था। लेकिन आज मनुष्य स्वतन्त्र है। वह कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की अपनी कसौटियाँ बना सकता है। इस कारण हमारा नैतिक जीवन काफी दिग्भ्रातं नजर आता है। क्योंकि आज हमारे सामने जो संकट है, वह नैतिकता का नहीं है। संकट नैतिकता का होता तो हम इस ऊहापोह में पड़े होते कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक। परन्तु इस तरह की व्यग्रता कम ही देखी जाती है। समस्या यह है कि नैतिकता का जो स्वरूप हमें मान्य है, उस पर हम अमल क्यों नहीं कर पाते, हम जानबूझकर झूठ क्यों बोलते हैं? पड़ोसी की पीठ पर छुरा क्यों मारते हैं? धोखा क्यों देते हैं? दूसरे के हितों की अवहेलना कर अपना स्वार्थ क्यों सिद्ध करते हैं? क्या यह हमारा व्यक्तिगत पतन है या कुछ और। क्या वैदिक कालीन कर्त्तव्याकर्त्ताव्यता अब उपयोगी नहीं है। नैतिकता के मुख्य आधार क्या हैं? नैतिकता का स्रोत क्या हैं? क्या नैतिकता सिर्फ व्यक्तिगत आदर्शवाद है या सामाजिक व्यवस्था? इत्यादि।

जब हम कहते हैं कि नैतिकता का स्तर गिर रहा है तो उसका तात्पर्य यह है कि नैतिकता का स्तर परले अच्छा था। अधिकांश लोग इस बात को मान रहे हैं तो इस नैतिकता का प्ररेणास्रोत क्या था। भारतीयों का विश्वास है कि मनुष्य का प्रादुर्भाव जगत् के स्रष्टा ब्रह्मा से हुआ है। वे सर्वज्ञ है।[21] वे एक हैं।[22] उन्होंने ही मानव कल्याण के लिए वेदों और शास्त्रों की रचना की। मनुष्यों के पूर्वज ऋषि और मुनि थे, जिनको ब्रह्माण्ड और जीवन का हस्तामलकवत् ज्ञान था। यह भी विश्वास था कि पूर्वकालीन मनुष्य अधिक ज्ञानी, सदाचारी और शक्तिशाली थे। उनका ईश्वर और पुनर्जन्म में सम्पूर्ण विश्वास था। जिससे सत्य और भ्रातृत्व का संस्कार पनपता था। हम सब ईश्वर की संतान हैं, इसलिए भाई–भाई हैं। सत्य छिप नहीं सकता, मृत्यु के बाद भी जीवन है। इसलिए पुण्य करना कल्याणकारी तथा पाप विनाशकारी है इत्यादि प्रेरक बातें थीं। व्यक्ति खुद भटक सकता है, अतः ईश्वर, धर्म, पुनर्जन्म सत्य और भ्रातृत्व के मूल्यों पर आधारित समाज को बनाया गया था। क्या हम नैतिकता के उस पुराने स्वरुप को पुनः ला सकते है? यहाँ समस्या यह है कि जो वेदों, स्मृतियों और पुराणों को नहीं मानते जैसे– जैन, बौद्ध, ईसाई और मुसलमान आदि। वे लोग धर्म को कैसे जानें? उनके भी अपने–अपने धर्म हैं। केवल यह कहने से काम नहीं चलेगा कि ''इस देश में पैदा हुए ब्राह्मणों से पृथ्वी के सब मनुष्य अपने–अपने आचार और व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करें।[23]

कर्मफल, पुनर्जन्म और परलोक की धारणाएँ मनुष्यों को शुभकर्मों की ओर प्रवृत्त कराने के लिए अर्थवाद के रूप में बनाई गई थीं। वर्त्तमान में मनुष्य को इनसे कोई प्ररेणा नहीं मिलती। उसको तो अपना जीवन इसी लोक में दिखता है। आज का बालक कोई नचिकेता नहीं है, जो यहाँ के सुख और भागों पर लात मारकर यह जिज्ञासा करे कि मौत के पश्चात् क्या होता है।

आधुनिक सन्दर्भ में नैतिकता के कुछ मूल तत्त्वों की खोज करें तो पहला तत्त्व व्यक्ति और सार्वभौमिकता के बीच का सम्बन्ध है। यानी आज ऐसी नैतिकता की कल्पना नहीं की जा सकती जो किसी स्थान विशेष, किसी समुदाय विशेष या किसी वर्ग विशेष के हितों के अनुकूल हो। भूमण्डलीकरण के इस दौर में सबसे बड़ी सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सच्चाई यही है। दुनिया का हर व्यक्ति परोक्ष–अपरोक्ष रूप से भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है।

इस युग में धर्मनिरपेक्षता नैतिकता का एक बड़ा मूल्य बनकर स्थापित है। अगर किसी भी धर्म का मूलभूत तत्त्व यह है कि ईश्वर एक है, वही स्रष्टा पालयिता तथा संहर्त्ता है। वह सभी के कल्याण की व्यवस्था करता है तथा अन्य मनुष्यजाति के सदस्यों की वैसी ही चिन्ता करता है जैसे अपनी तो इस बात

से नैतिकता के विरोध की गुंजाइश कम रहती है। धर्मों की मूल नैतिकता भी यही है, परन्तु इसका व्यावहारिक पक्ष इस मूल नैतिकता को अभिव्यक्त नहीं करता। प्रत्येक धर्म सम्पूर्ण मानवता की बात कहकर तुरन्त इस क्षुद्रता पर उतर आता है, कि जो उसका धर्म है, वही वास्तविक है। अगर मनुष्य जाति को अपना उद्धार चाहिए तो सिर्फ उसी के धर्म में दीक्षित हो जाना चाहिए।

एक समाज की नैतिकता किसी दूसरे समाज की नैतिकता से भिन्न और विपरीत भी हो सकती है। एक समाज किसी जीवन मूल्य को अच्छा मान सकता है और दूसरा उसी को खराब। इसलिए नैतिकता के सवालों पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। पहले यह निर्धारित करना आवश्यक है कि हमारी आज की सभ्यता क्या है। यदि सभ्यता को हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाईयों आदि खाँचे में देखेंगे तो सबके मानदण्ड अलग होंगे। हिन्दुओं में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में बाँटकर देखेंगे तो अलग–अलग नैतिकताएँ देखने को मिलेंगी। इसलिए बुद्धिमानी तो इस बात में है कि आज हमें पूरी मानव सभ्यता को एक आधुनिक सभ्यता की इकाई में देखने की बात करना चाहिए। और यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि आज के मूल्य क्या हैं? और उसके खतरे क्या हैं? कौन से नए सवाल हैं? जो हमारे समक्ष यक्ष प्रश्न बनकर खड़े हैं।

उपसंहार

आज की मानव सभ्यता को एक इकाई के रूप में देखने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति आज पूरी तरह एक समाज या सभ्यता के दायरे में नहीं है। उसके खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार, संस्कृति, धर्म और भाषा के स्तर पर अनेक समाजों तथा धर्मों का सीधा असर है। इससे उसकी चिंतन की प्रक्रिया का आयाम भी वैश्विक हो गया हे। इसलिए उसे स्वयं को कुछ ऐसे नियमों से नियन्त्रित करना पड़ेगा जिनके अनुसार चलने से वह संसार के प्राणियों से सामञ्जस्य स्थापित कर सके और किसी को कष्ट न देता हुआ अपने आप सुखी रहे। इससे ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना को बल मिलेगा।

अन्त में महात्मा गाँधी जी का सत्य के प्रति दृष्टिकोण को उद्धृत कर समाप्त करुँगा। गाँधी जी ने कहा था ''अमूर्त्त सत्य का कोई मूल्य नहीं जब तक कि वह मनुष्यों में अवतरित नहीं होता, जो इसका प्रतिनिधित्व करते हैं और इसके लिए मरने को तैयार रहते हैं। हमारे असत्य और बुराइयाँ बनी रहती हैं, क्योंकि हम सत्यवादी होने का बहाना मात्र करते हैं अपने सत्यवादी होने के दावे को सिद्ध करने का एक ही मार्ग है, वह है अपने सत्य के धरोहर के लिए कष्ट सहन की तैयारी।[24]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋ. 8/101/15–16
2. ऋ. 6/22/10
3. ऋ. 5/43/7
4. ऋ. 10/37/2
5. ऋ. 10/190/1
6. यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा। ऋ. 5/44/6
7. सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे। यो.द.व्या.भा. 2/30
8. भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिकधारा), पृष्ठ 393
9. द.भा., ऋ. 1/1/8,1/2/8,1/65/2
10. निरुक्त, 2/25,4/19
11. ऋग्वेद में ऋत शब्द पर ग्रिफिथ भाष्य
12. अरविन्द, वेदरहस्य, पृष्ठ 102, 107
13. पापासः सन्तो अनृता असत्याः। 4/5/5
14. अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। श.ब्रा. 3/1/3/8
15. तदेतत् सत्यं त्रयी सा विद्या। श.ब्रा. 9/5/11/18
16. श.ब्रा. 24/4/2/26
17. धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
18. धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। मनु. 6/72
19. सत्येनोत्तम्भिता भूमिः। ऋ. 1/85/1
20. श.ब्रा. 24/4/2/26
21. गौ. धर्मसूत्र 1/1/1
22. ऋ. 10/121/10
23. द्यावाभूमिं जनयन्देव एकः। ऋ. 1/164/46
24. एतद्दशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
25. स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः। मनु.
26. यंग इंडिया, 13 जुलाई, 1931